इतना कुछ

गंगा प्रसाद विमल

तुलसी दिवस के लिए

अनुक्रम

चल रहा हूँ वर्षों से

स्मृति के मणिबंध

रास्ते वही हैं

चल रहा हूँ वर्षों से

लोगो के साथ

शामिल होना चाहता हूँ मैं
क्या
जबकि इतिहास म
हम सबको होना है अनकहा
इस अधी दौड म।

अकेला भी होता
तो गनीमत थी
हाशिय की तरफ बढा लेता
अपना अस्तित्व

अर्जुन के विपाद को
तो रूपान्तरित होना ही था
बाध म।
अकेली नहा है ग्लानि
विफल कोशिश भी है
मुक्ति की
वही तो
दिखाती है दपण

और मैं देखकर
अपने चेहरे के पीछे
पहाड देखता हूँ।

देखता नहीं हूँ
कि मैं भी मामूली स व्यर्थ म
अर्थहीन कम म
शामिल हूँ
कामनाओं का बोझ उठाते
लोगों के साथ

जो कुछ हो रहा है

हो चुका
जो भी कुछ
इतिहास में
उसमें नहीं मैं।

नहीं था मैं
जब बिके थे गुलाम
न खरीददारों में शामिल
था मैं वहाँ नहीं
जहाँ कुछ होने की योजनाएँ बनीं।

मैं शामिल रहा
सत्ता में
न प्रतिपक्ष की शाखा में
कि कल कहाँ होंगे
जहाँ आज वे
अपने दुश्मन को
सम्बोधित हैं।

जो कुछ हो रहा है
यह मेरी सहमति
या हाँ कहने से नहीं
और जो कुछ कल होगा
उसके लिए भी
नहीं पूछा गया

मुझसे कुछ भी नहीं
बन पड़ेगा
उनसे
जो बिना पूछे
दुनिया को बदलने की ताकत
लिए हैं मेरे और उनके नाम से
न पिरामिड बनेगा
न गिरेगा
मेरे कहने से कुछ न होगा।

जो कुछ हो रहा है
उसमें मेरी भूमिका
सिर्फ इतनी है
कि मैं डर के बहाने खोजूं
और इन्कार करूं
कि यह मेरे
कहने से नहीं

धान रोपते हाथ

पानी भरे खेतों में
रोपते हैं धान
सुनहरे हाथ।
चेहरों पर झलकती
श्वेताभ शान्ति
बर्फ लदे पहाड़
जैसे हो जाते हैं कोलाहल से अलग
दृश्यों में झलकेगी
सदियों की दहकन
आँखों में
साठ दिनों की प्रतीक्षा
अब पकेंगे धान
भरेंगे खलिहान
सुनहरे हाथों में खनकेगा
कोठार में अन्न निकालते
परिश्रम का अर्थ।
अभी तो मिट्टी सने हाथों में
प्रतीक्षा है
मिट्टी में
राग
धान रोपते हाथ
रोपते हैं भविष्य

वन मे

वन राज्य म
चीखता है सन्नाटा
चुप म
रहती है वनाली
शोर म
मचाता है उत्पात

जानवर को
पता नही है पेड
ठिठका सा
सोचता है विवेक
कितना शोर है शहरो मे
क्या आदमी भी
बन गया है पशु

वन मे शान्त हो जाता है
अंधड,
बादल
पसीज कर
देते हैं जल।

जलश्री धरती को धोकर
चमकाती है धूप
सुन्दरता
ताडती है सन्नाटे की चुप्पी
पत्तियो की चटख खट खट

भूल जाएं

किसस कहूँगा
क्या हुआ ?
अकल्पित है
प्यार

जानने पर
अविश्वास में
मैंने खुद को छुआ
कई बार

आह !
कितना दुःख है
केवल जानने में
उस दोष है पछतावा
निराधार।

क्या मैं उजाले में था
उस वक्त
याद नहीं
शामों के झुटपुटे में
कहाँ देख सकता था खुद को
पहले ही जान गया था मैं
वह अंधकार

न—इसमें भी सार नहीं
कि कुछ हुआ था
होना ही था तो क्या
उसे खत्म होना था
घटता रहता
बार-बार
निस्सार निस्सार
पछतावा निस्सार

गतव्य

चल रहा हूँ वर्षों मे
नही पहुँचता हूँ
कही भी।

वहीं से शुरू
हो जाती है दिन की यात्रा
जहाँ हुई थी खत्म।

सदियों मे
ऐसा ही
चल रहा है क्रम
दुनिया भी
नहा पहुँचती कही
अतरिक्ष के रास्तो स।

रास्ते वही हैं
चलती हुई दुनिया के
आदमी के
उतना ही बदलता है सब कुछ
जितना फिर फिर
किसी भी दुहराव मे
मौसम
बदलता है।

यह जो मैं
चल रहा हूँ
क्या अपने को छल रहा हूँ
गति मे
प्रगति म

यह जो गतव्य है
वह भी वही है
जैसे चलना है

चलने से गतव्य तक
रास्ते
अपनी जगह नहीं बदलते
मतव्य स
फिर किसी भवितव्य का
रास्ता
हो जाता है तय

चल रहा हूँ मैं भी
गतव्यो की आर
पर पहुँचता
कही भी नही

क्षमा

कौन करेगा मुक्त
इस दासता से ?
दासता यही कि
कुछ नही कर सकता मैं
मनचाहा
अपराधो की क्षमा
कौन देगा ?
क्योकि मुझे लगता है
जिसने यह जीवन दिया
उसने मुझे सबसे पहला दण्ड दिया
दण्ड दिया कि मैं
सहता रहूँ जीने की यातनाए
तुम्ही ने बताया है पिता
अपनी निष्पाप आखो से
पाप तो
सताना है
तो क्या तुमने पाप नही किया
कि मुझे पापो के बारे मे सचेत किया।

कितना अच्छा है
क्षमा माँगना
आत्मस्वीकार से
बरी हो जाना पापो से
मुडना फिर नये पापमय स्वर्ग की ओर।

तुम

हवा यहा भी है
आसमान भी
पर तुम नही हो
नगे पेडो पर
फूटेंग पत्ते
खिलेंगे फूल
पर कहाँ खिल सकता है
दिल मे
खुशी का फूल
क्योंकि यहाँ नही हो
इस वक्त तुम ।
पार करता हूँ मैं
कल्पना म दूरिया
दखता हूँ तुम्ह
खिलते हुए
पर कल्पना मे ही
सचमुच
तुम नहीं हो फिर भी
छू नही सकता मैं
केवल सोचने भर से ही
यही तो फक है
तस्वीरा म दखी बफ म
और पहाडो पर
ताजा-ताजा गिरी बफ

हवा क्या कहे

हवा क्या कहे
पड़ से
न हिला करो मेरे बहने पर

क्या कहे पर्वत
न हो उल्लसित मानव मन
निश्चिन्त पड़ा रह सकता है ?
पत्थर
न भी कहे किसी से
पटको न सर
टूट गिरेगा झर
अहंकार कब कहता है
सहता है दूसरे का उठना
कब टूटता है
अहंकार का शिखर

कहो तो तुम भी
मेरे शिशु मन
कौतुक कब तक रहेगा
ठिठका हुआ विश्रान्ति में

ठीक वैसे ही
हूँ मैं बेचैन
खोये हुए स्वप्न की तरह
जो कभी न आयेगा
कभी नहीं।

पेड जडो से शुरू होता हे

पेड जडो से शुरू होता है
बढकर
आसमान की तरफ
हमेशा ऊँचाइयाँ ताकता है
पर जडें नही छोडता।

जडो से वह
बार-बार पनपता है
ऊपर हवा के साथ
आसमान की ऊँचाइयो से
रिश्ता कायम कर
नीचे जडो से
धरती से जुडा रहता है
पड आदमी नही

जो उछलकर दूसरी तरफ हो लेता है
आखो से सीधे
या ज्यादा से ज्यादा
नीचे देख सकता है

पेड नीचे, ऊपर
सब ओर रहता है
वह शत चक्षु

प्रतीक्षा

मैं करता हूँ
इन्तजार
होने का
जादूगर
क्षणभर
करता है विमोहित
केवल घटता है
सब कुछ
उसकी हथेली पर।
उसकी हथेली पर
उगती है सरसो
बरसो से
जो नही करते इन्तजार
वे चुपचाप
आदमी की खाल में
जादुई तिलिस्म
भरते हैं देवत्व
झरता है सुख
उनके आईनो में
तकती हैं मेरी आँखें
मेरे सुख अभी
कल्पना में
करवट बदलते हैं
वक्त ही करवट नही बदल रहा
करता हूँ इन्तजार मैं भी।

दोस्त

तुम्हारी आखो में
किये हुए प्रेम की खुमारी है
वह तस्वीर है
जिसकी याद
काकेशन की सुदरियां हैं
बस—इस वक्त तो मुझे केवल दिखाई दे रही हैं
तुम्हारी आखा के
विस्तृत मदान में
घटती हुई घटनाएँ
वही कुछ घट रहा है
जा अब आखो में
छपा है
छपी हुई किताब से
मैं पढता हूँ तुम्हारा अतीत।

सूखा

न वन-घाटियों की आग
न चीड़ की लपट

न कोई आकस्मिकता
खेत मैदान फटे। न कोई भूकम्प

जैसे बजर सूखा आसमान
धरती पर आया हो उतर

सरकारी खबरें या दूसरे अखबार
कहते होंगे बहुत कुछ

किसानों की आँखें, घास लाती औरतों के पाँव
पानी उलीचते हाथ
मीलों-मील चलते कदम
कह देते हैं सब कुछ। हाँ सब कुछ।

तुम्हे सम्बोधित है यह

मैं तो तुम्हें देख रहा हूँ। सदियों से नहीं
कुछ ही वर्षों से

नींद से जागकर देखने जैसा नहीं
बल्कि आत्मग्लानि के रूप में

सदियों से ऐसा ही चल रहा है चक्र
तब भी मैं जिम्मेदार हूँ
इतने वर्षों के लिए

तुम्हें देख रहा हूँ काम करते
बोझा उठाते बर्तन माँजते
जुगत से गृहस्थी चलाते

खैनी में खुश होते
सत्तू में उत्सव मनाते

तुम्हें देख रहा हूँ शहरों गावों,
कस्बों में। धीरे धीरे कच्ची उम्र में
कुम्हलाते। मेरी तरह की आँखों में
छपे होंगे ये दृश्य
नहीं तो क्या अंधों की तरह
नहीं देखते होंगे लोग

हाँ—नही देखते होंगे
आज की तरह ही। उन्हें दिखते ही नही हैं
पटरियों पर सोते
इधर-उधर बिखरे
सब ओर दीनता से तुम्हारी ओर टक लगाए
फिर भी नहीं दीखते ये लोग
यह कविता उन्हीं को सम्बोधित है ।

मूर्तित-अमूर्तित

रहस्य

अनावत होता है शब्द म
अथ के
देश मे
फिर स रहस्य
घिर आता है अठोस

शब्दान्तरित होने की
यह प्रक्रिया
कितनी तरल है
जा अभी ठोस और सरल था
पलान्त मे वही
फिर से लौट गया है
अबूझ म ।

जब-जब मैं उसे
उकेरता हूँ साफ-साफ
झिलमिलाती मूर्ति मे
आँखा से झरता है
अगोचर
ठोस और अगोचर—यही यात्रा है
अनन्त की

आडम्बर

सच रहता है
अँधेरे की गुफाओ मे
और झूठ
प्यार के प्रदशन म

जब-जब कोई आता है
प्यार जताता है
तब-तब कोशिश करता हूँ
न करें विश्वास सच का

झूठ बेहद विश्वसनीय है
अपनी ही तरह करीबी
आखिर वह भी निकला है
मानव यथाय स

सच के आडम्बर म

ओ देवमूर्तियो

इतिहास से
आज तक के इस लम्बे निर्वाक
रास्ते पर
तुम्हें बैठाया है मनुष्य ने
अपने विश्वास को
सशय म बदलने के लिए

तुम एक पेड के नीचे
छोटे से गोलाकार
शिवाकृति म
सेंदुर वर्णी या श्यामाक्ति
तुम मे तरगित होता है
हिमाकर वास्तव

शून्य के
अपने निजी वण म
तुमने रँगा है हिमालय
हर पल
वह एक वण जो मेरी दृष्टि म
बसा है अब
अगले पल इतना बदल जाएगा
कि आश्चय म ही होगा अत

इस अनन्त के
गवाह तुम
देवमूर्तिया
ओ देवमूर्तियो, तभी तो
अवाक् हो तुम
केवल चित्रित

पहले मैं डरता था

पहले मैं डरता था
भाग्य से
अप्राप्य से
दुर्घटना की कल्पना से
अब डरता हूँ खुद से।

इसलिए नहीं कि खोफ की जगह ले ली है मैंने

इसलिए कि एक अदद बालपन
और यौवन के बाद
मन में अभी भी वैसी ही
ललक है रूप की
प्यास है पाने की

बचपन में थर थर कांप
और यौवन में छिप कर प्यार
उससे परे न तब देख पाया था सुख
न अब

डरता हूँ अपनी सीमित दृष्टि पर
डरता हूँ देख नहीं पाया हूँ

डरता हूँ अपने अंधेपन से
अपनी आँखों में देखता हूँ निपट स्थिरता
डर की ठिठक

इतना ही होना था सब
तो क्या हुआ
थोड़ी-सी बारिशें
थोड़े पतझड
और अधूरे बसंत

फैली हुई नदी के सपन रहेंगे
देखता हूँ अपनी आँखों में
सूनापन
फीस—ऐसी अतुलनीय
मिलता नहीं है शब्द
चित्र
या मुद्रा

डर से सिकुड़ कर
बाहर से कट कर
केवल अपनी प्यास से
भरता हूँ खुद को
डरता हूँ खुद से।

भविष्य

स्मति और कल्पना म भी परे
वह एक साचा हुआ भविष्य
अब तक आया ही नही

प्रतीक्षा म था मैं
जगलो स नगरो की यात्रा म
भटकाव और दुराव के बीच
छिपाता रहा वह छोटा-सा अकल्पित-सा स्वप्न
छिपाता रहा उस भाषा स
चिह्न म
सक्ता स

टोहता रहा हर पडाव पर
शायद कोइ इगित
उस मर पास ले आए

इतन वतमानो के बीच
युद्ध आए। विपदाएँ। हताशाएँ
प्रतीक्षारत रहा
रहूँगा जब तक देख पाऊँगा।
अपनी आत्मा के दपण मे
वह सुरक्षित सा भविष्य

जीवन

शून्य के विराट मौन मे
चुप्पी का अथ खोजना है वाक
एक नगधडग बच्चे की तरह
पोशाक मे वेखबर
शम की हल्की सी स्मिति म
झेंप क साथ
बोलता है जैसे अनबोला मौन

शून्य के अहसास ने
जन्मा है भराव
एक छोटी-सी दुनिया का
नाद
तुतलाते शब्दो-सा अथहीन

अपने को मायकता देना है जैसे
अनन्त का सन्नाटा
गहरी डूब म
और अधिक गहरा जाता है
सूनेपन की आकृति ही
जसे शाति है
तो नही चाहिए अनाद शात

खोजने दो वाक का
सन्नाटे का अथ निरथ मे
आखिर निरथ शून्य से
प्रगटता है जीवन
छोटे से स्फोट मे

सूरज मुझे देखता है

सूरज देखता है मुझे या नही
इससे क्या
मैं तो उसे देखता हूँ
उससे मैं देखता हूँ
दूसरी चीजें
यानी खुद को भी
जिसे भी देखता हूँ आलोक के द्वार से
भीतर बुला लेता हूँ उसे
आंखो के माग से
और थाम लेता हूँ
स्मृति मे
स्मति के पडावो मे
छन छन कर बिंबित होती हैं
सूक्तियां
बनती हैं वे अव्यक्त रूप से आत्मीय
ममत्व और अकेलेपन की साथी
देखता हूँ उनको
फिर फिर से स्मृति के यत्र से
और तमाम टूटे क्रमो का जोड
आच्छादित कर देता हूँ
अपने घर की तरह छतवान

जो कुछ मैं देखना हूँ
देखना ही है वह
निर्विकल्प
वही तो मेरा घर है
बेघर लोगो !
वह हम सबका घर है ।

आदिम जिज्ञासा

दा अधकारो के वीच
खुली रोशनी मे
खिला है जीवन का फूल

दिखता है आलोक म उभरता
विकसता
सतत नामद मे भटकता निर्मूल

उठता है शूल हा शूल
अँधेरे म ही होगा क्या निष्पन्न ?
अनात पर्दों के पीछे छिपी है हत्यारिन कूल
दो अधकारो के बीच
दिखता है रोशनी म कुछ कुछ
शेप अदखी रह जाती है चूल

शून्य म पन्ायहीनता से लिपटा
टँगा ह हमारा आवाम
यही है क्या हमारा मूल

दो अधकारा के बीच

कौन आएगा ?

खुले आकाश के बीच
झांकती हैं धरती, चारों दिशाएँ
सदियों से

सदियों से
धड़कती हुई इकाइयाँ जैसे ही
होती हैं शांत
दूसरी धड़कनें लगती हैं माटी में
उन्हीं की खुली आँखों में
हस्तांतरित हो जाता है स्वप्न

कौन आएगा
अन्तरिक्ष में
सोचता है और कल्पना से
खुले आकाश में
ठिठका रहता है मन
जैसे वह भी प्रतीक्षा में हो
किसी नये आगन्तुक की
खुलेपन की चाह से
केवल शून्य आता है
शून्य ही जाता है
लगता है अन्तरिक्ष में
सब अपने-अपने में व्यस्त हैं

व्यस्त है गुरुत्वाकर्षण
व्यस्त है जन्म-मृत्यु ध्वस निर्माण
फिर भी इसी खोह स
प्रतीक्षा है
प्रतीक्षा की प्रतीक्षा
आएगा काई
अतरिक्ष के विशाल, अनन्त से
और मिलाएगा दो छोर
जो दोनो एक-दूसरे से विलग है।

मैं उसे देखता हूँ

मैं उसे देखता हूँ।
देखता हूँ दूब को एक छोटी-सी
सड़क में उगते
खुशगवार हवा दूर्वा के शिखरों में
भर देती है ताजगी

देखता हूँ उसे
कलकल बहते जल में
[illegible] है माग
और घन पड़ता है मंद
फिर फिर मिलन दूसरे में

उसे मैं देखता हूँ
सुबह में
शाम में
कभी-कभी विमोहित-सा
अपने काम में
उसे दूसरों की हँसी में
बच्चों की अबोधता में
उसे देखता हूँ खुद कभी कभी
अपने एकान्त में

पर्वत शिखरों के
सवताम उजाले में

उन्मुक्ति का जो द्वार खुलता है
मन्दिर की घण्टियों में
सुसुप्ति से जाग कर

देखता हूँ उसे
आकाश म छितरे किसी एक
छोटे से बादल में

देखता हूँ उसे
सब ओर
जब तक ऐसा कर सकता हूँ

वरना

बन्द कर अन्तरंग चक्षु
शामिल हो सकता हूँ मैं
निन्दकों नास्तिकों,
प्रश्नकर्ताओं म
वहीं म आते हैं हत्यारे शापक
वहीं से आती हैं अव्यवस्थाएँ

लोग

अपने में मग्न हैं लोग
इतने ही त्रस्त हैं लोग
जयजयकार में भी
हाहाकार में भी।

खड़े नहीं रहते केवल कौतुक में
मौका मिलने पर
अगवानी में आगे बढ़
सोचते हैं निरीह लोग
शायद इस बार
खा जाय भाग्य पलटा

अपने में त्रस्त हैं लोग
इस उसकी आलोचना में
सोचते हुए छोटे छोटे सुख
दख नहीं पाते पार
बनती अदृश्य दीवार
न हाहाकार में
न जयजयकार में

किस तरह शामिल हैं लोग
चुपचाप हताशा में या पश्चात्ताप में
धोखेबाज लोगों के पीछे

कतार बांधे खडे चापलूसो को देखते
शामिल हैं शामिल
जयजयकार मे भी
हाहाकार मे भी

धारावाहिक दु ख मे
धर्मग्रथ उठाए, सुरक्षा की कल्पना मे
कुचक्र की फास से
बेखबर हैं लोग
जयजयकार मे भी
हाहाकार म भी

भविष्य के लोगो !

तुम जब हत्यारा की सूची बनाओगे
तो मुझे मत भूलना
न सही
मैंने हाथो मे बदूक नही पकडी
पर मैं चुप था
अन्याय के वक्त
कहवाघरो म
लतीफेबाजा के बीच
जो बटवाले थे
उनम एक मैं भी था।

जब हत्याएँ होती थी
मैं मुह फेर लेता था।
कितन मरे होंगे
नाम, सख्या नही है मरे पास
पर मेरी सदी मे
हर साल
बाढ़ से लाखो लोग मरते थे
मैं उन्हे हत्या कहता था
क्योकि सत्ता को मालूम था
बाढ आती है।
वेतनभागी बाबुओ को क्या मतलब
कि कोई झाबुआ मे डूबे
आध्र या विहार मे

कहीं भी
मुझे ठीक से इनके भी
नाम नहीं मालूम।
तुम मेरा नाम जरूर लिखना
न केवल मैं चुप था
विदूषकों के बीच था
बल्कि मैं तो
सनसनीखेज सुबह की इंतजार में
हमेशा सजग था।

जब कुछ नहीं घटता था तब
मैं ऊब जाता था।
मैं हर तरफ से शामिल था
इसलिए मुझे भी सूची में शामिल करना
मुझे भी देना दंड
उपेक्षा का नहीं
उसमें मैं जी उठूँगा
किसी शोध में
इतिहास को फिर से लिखना
मेरे सोते हुए लोग
तब सो ही रहे थे विश्वासपात्र
अफसर
मैं हत्याएँ कहता हूँ।

हत्यारों में केवल
वे ही नहीं शामिल
जिनके साधन विफल हुए थे।
अखबार
बनिये
अध्यापक
कलाकार
ये सब शामिल थे।

इसलिए कि ये अपनी-अपनी
चिताओ म
अपने निर्माण म रत थे।
इ ही के भविष्य से
कितने ही अतीत
और वतमान टूटे थे।
लिखना इनके भी नाम

रास्ता

रास्ता किधर है
रास्ते म पूछते
हैं हम
राहगीर मे
जो खुद
है तलाश मे ।
रास्ता इधर है
एक दिशा ।
और दूसरी दिशा
हो जाती है विजन
रास्ता उधर है
बताती हैं किताबें
दशन
और क्रांतिकारी
बीच म छोड
रास्ते के ही बीच से
विदा हो जाते हैं वे
और रास्ता
इतजार मे रहता है
नये पथिक
आत हैं । जाते हैं ।
विलुप्त हो ।
फिर फिर आ जाते हैं ।

काश पेडो के पाँव होते

चल कर आता
मेरे आँगन का नारगी पेड
पीली उजास लिए
छननार छाया
हर वक्त रहती साथ
कितना जलता सूरज
ईर्ष्या म

बादलो को झिझोडता
ऊपरी तल्लो पर
रहन वाली सुदरिया क साथ
दूरणवत व्यवहार करता
पेडो का पाँव होते
तो क्या कोई उन्हे काटता ?
सब जगह रहते वे
रेगिस्तान कहाँ रहता है ?
पेडो के पाँव होते तो
होती कितनी कथाएँ
कविताएँ
और बदल गई होती
यह दुनिया।
व चल नही सकते
अपाहिज
उन्ह काटत हैं लोग

उ ह काटते है लोग
तो काट दते हैं
पक्षिया के आवास
प्रकृति का सदाबहार
यौवन
काट देत है लोग
स्मृति
और सरहद रेगिस्तान की।

राज-काज

पूछता है हाकिम
मातहत से
मातहत नीचे जाकर
लाता है खोज खबर
रोज खब- वसी ही है फिर भी
बदलता है वह कुछ शब्द
कुछ बदल डालता है हाकिम
कुछ सत्ताधिकारी।

बिल्कुल ही बदल जाती है
सच की तस्वीर
ऊपर मीनारों मे जाकर
फिर उसे पहनाता है लिबास
गभीरता से बुद्धिजीवी
दाशनिक मुद्रा मे
पैनाता है शब्द व वाक्य
खरीदे गुलामो की तरह
खिसियानी हँसी म
देता है सर्वाधिकार
सत्ता को।

सच की तस्वीर
उतारी जाती है जनता मे

उह काटते हैं लोग
तो काट देते हैं
पक्षियों के आवास
प्रकृति का सदाबहार
यौवन
काट देते है लोग
स्मृति
और सरहद रेगिस्तान को।

राज-काज

पूछता है हाकिम
मातहत से
मातहत नीचे जाकर
लाता है खाज-खबर
राज खबर वैसी ही है फिर भी
बदलता है वह कुछ शब्द
कुछ बदल डालता है हाकिम
कुछ सत्ताधिकारी।

बिल्कुल ही बदल जाती है
सच की तस्वीर
ऊपर मीनारो मे जाकर
फिर उसे पहनाता है लिबास
गभीरता से बुद्धिजीवी
दार्शनिक मुद्रा मे
पैनाता है शब्द व वाक्य
खरीदे गुलामो की तरह
खिसियानी हँसी म
देता है सर्वाधिकार
सत्ता को।

सच की तस्वीर
उतारी जाती है जनता मे

भौचक वे अपने ही चेहरे को
इतना नकली देख
हँसत हैं विमुग्ध
मुखौटो की कला पर

किसकी तस्वीर है वह ?
पूछता है हर कोई
हर कोई दूसरे पर अँगुली उठाता है।
मुखौटो को कला पर
ठहाक लगाता है
फिर स शुरू हो जाता है कामकाजी दिन
खबर जुटाने का क्रम

इतना कुछ

इतना कुछ कहा गया है अब तक
फिर भी कुछ है जो नहीं कहा गया
मैं वही कहना चाहता हूं

जितना कुछ लिखा गया है अब तक
फिर भी है कुछ बाकी जो नहीं लिखा गया
वही तो लिखना चाहता हूँ मैं

सहने की अनेक गाथाओं में
विचित्र-से भयंकर और क्रूरतम
सब कुछ जैसे सहा गया है
पर सूरज के आने और विदा होने तक
हर रोज—यह असहनीय वक्त
सहना पडता है। चुपचाप बिना इन्कार किए
वही तो खोजना चाहता हूँ मैं

शब्द और अर्थ के बीच
अमूर्तित मूर्ति को
इतनी बार खोजा गया है सदियों से
फिर भी

आँख भर

आख भर देखन से नही छपा दश्य
स्मति म । क्या वह चाह थी या
प्रवास

दिन उगा । आलोक ने दिखायी जाग्रति
चट्टान फिर भी सोती रही या
उसकी प्रकृति थी या
शाश्वत निवास

पेड घने एक दिन हो गये नगे
मौसम मे । लौटाने वही बीता हरापन
शून्य म शून्य का आग्रह का या
खुलने का लिबास

इस उदारता म नही खिला फूल
न धूप म न जल स
न अपने अकेलपन से
छिपा ही रहा वह अदृश्य
पहने छिपाव की पोशाक

मैं सीधे चल रहा हूँ या पीछे
उतर रहा हूँ या चढ़ रहा हूँ
समय की सीढ़ियाँ
जानने का न अवकाश है
न अहसास ।

बीतता रहता हूं

पाने के लिए मैंने हाथ बढाए पहले
या बांह । या उससे पहले चाहने
चाह से भी पहले किसी अदृश्य कामना ने
कल्पना में देखा हो प्राप्य

उसे तो टोह रहा हूं मैं पहले बांहों मे भीच
फिर चुम्बनों से तर कर
फिर सब जगह—सभी केन्द्रों में टटोलकर
आखिर मैं थक कर
पीछे झांकता हूं कि तमाम कामों से
मैं तो था ही और वह भी
लेकिन प्राप्य का सिरा जैसे
सिरे से ही गायब था

जिसे पाना चाहता है मन
कहां ठहरता है तस्वीर में ?
विवेक से कहता हूं दबोच इस खरगोश को
बुद्धि के जाल मे अटका
सब कुछ करता ही हूं। तमाम तामझाम
पर जिसे आत्मा ने चाह की तीव्रता मे
जीवित रखा, कहां है वह ?

मेरी कोशिशों में वह खिसक जाता है विस्मृति मे
फिर से टोहता हूं उसे
माध्यमों मे
और बीतता रहता हूं हर लौटते मौसम मे

आखेट

उसे नहीं अहसास
आखेट का।

वह तो चला आया पहाड़ों से
समृद्धि की खोज में
चाकरी में कोसता है कभी-कभी
नक्षत्रों को
जन्म के लग्न को

कभी कभी चौंकता है
जिस आधार से चिपका है वह
उसका व्यापार करते हैं लोग शहर में
न उन्हें सताता है पाप-पुण्य
न काटती है ग्लानि

वह तो आया था
ऐश्वर्य के स्वर्ग को देखने
उसे नहीं था अहसास
न विश्वास कि नरक के ठीक ऊपर ही
नरक की ही भित्तियों पर
टिका है शहर का स्वर्ग

उसे याद आता है गाँव घर का अँधेरा

कितना आत्मीय प्राप्त था
विलुप्त है जो इस चमचमाती रोशनी में
रोशनी के आखेट का
नहीं है उसे ज्ञान
न भान है कि वही तो शिकार है
इस पूरे खेल मे

सुरक्षा

कानून की किताबों मे शब्द हैं
सुरक्षा
और यह हम सब देख रहे हैं
जो पल पल घट रहा है
सुरक्षा के कानून से

पवित्र ग्रन्थो मे लिखा है प्यार
हमदर्दी
अहिंसा
और हम देख रहे हैं नफरत का झोंका
पवित्र पुस्तकों से
इबादतगाहों की सरकार
जबड़े खोल
हर मस में किसी का निगलने
चला आ रहा

व्यवस्थाओं की सुरक्षित छतरियो के भीतर
नायाब षड्यन्त्र चल रहे हैं
हो रहे हैं अभ्यास हत्याओं के
देखो, गौर से देखो

हर इमारत रँगी है खून के
रंग में।

खुले आकाश के नीचे
अपने आप म
पेड कितना निश्चिन्त है
उसके पास न ग्रन्थ है
न कानून
न सुरक्षा का ख्याल।

टोह

घने अँधेरे में [illegible] रोशनी
आँख खोले को। [illegible] रोशनी
रोशनी के बिम्ब में दबते हुए
क्रम में। सोचता हूँ अँधेरे में
निष्प्रभावी है दृष्टि और उजाले में
मगर न हो आँख। फिर भी रोशनी का
पैगाम क्या [illegible]?

देखने पर भी अंधा हो जाता है आदमी
भरपूर रोशन होते हुए भी
कितना कम दीखता है सामने होते मजदूर
भीख माँगते निरीह
स्टेशनों, मंदिरों और भीड़ भरी जगहों पर
उन्हें तो कोई देखता ही नहीं है
न संतुष्ट लोग न विज्ञापन
न मनोवेत्ता न राजनेता

घने अँधेरे में नहीं टोह सकती दृष्टि
नहीं टोह पा रहे हैं हम
कारण या विवशताएँ
असमानताएँ बढ़ रही हैं सीमातीत

चकमक रोशनी में लिखे पत्र
जिसे हम देखते हैं वह नहीं
अँधेरे की प्रतिकृति तो नहीं
उसमें भी दुराव है छिपाव और रहस्य
गुफाओं-सा शहर में।

कहाँ पहुँचते हैं हम

कहाँ पहुँचते हैं हम चलकर
सडक से फिर सडक पर

राजमार्गों की दिशाएँ
बडे भवना की ओर हैं इगित म
पर वहाँ प्राचीर हैं
और फिर पार
थोडे मे तन और वनाली
वसी ही पगडडियाँ हैं शैशव-सी

छोटे छोट निजन पथ
मिलते हैं जनपथो मे
जनपथ
दौडते हैं राजमार्गों की ओर

आग रास्ता नही
कहाँ पहुँचत है हम लौटकर
सडक मे फिर सडक पर

गत या के वाद
यात्राएँ खत्म नही हाती
आकाशमार्गों स
चलकर ठिठकते है फिर सडक पर

जीने की शत मे
एक मात्रा है अन त की
दीवारा के पार अन त ही अनन्त है।

घर

घर मुझम रहता है या मैं

घर म
कौन कहाँ रहता है

घर मे घुसता हूँ तो

सिकुड जाता है घर
एक कुर्सी
या पलग के एक कोने म

घर मेरी दृष्टि म

स्मृति म तव कहीं नही रहता
वह रहता है मुझम
मेरे अहकार मे

फूलता जाता है घर

जव मैं रहता हूँ वाहर
वह मेरी कल्पना से निकल
खुले म खडा हो जाता है
विराट सा
फूलो के उपवन-सा उदार
मेर मोह को

सवेदन म बदलता
और सवेदन का त्रास म

घर मुझ मे रहता है अक्सर
मैं भी रहता हूँ उसमे
वह बाँधे रहता है मुझे
अपन पाश म

स्मृति के मणिबंध

स्मृति की खोह

शहर म मर साथ ही
　　　　बहुत पहन
　　　　चला आया था अदृश्य-सा मग समूचा गाव
चले आए थे मेरे साथ
मेरे पेड
फूल, पत्तियां, खेत, खलिहान
यहा तक कि जगल और बियाबान
चले आय थे खामोश

व मव रहते हैं मेर साथ ही
खासते बूढे, प्रतीक्षारत विवाहिताएँ
निस्पृह खेतिहर अबाध बच्च

जहा भी जाता हूँ
हाथ पकड ले जाता हूँ उन्ह
उनके उत्सव, झण्डे, मन्दिरो की ओर लपकत मन
खेतो म मुस्काती वक्ष छायाएँ
पके फलो की लदी टहनियां
इधर उधर फुदकनी चिडिया
और जब भी वक्त मिलता है, कुर्सी के हत्थे पर सिर टिका
उनम बनियाता हूँ दिवास्वप्नो में
शहर की बसो में चढते
　　　　बूढो और औरता को जगह देत
　　　　मैं उन्ही का आदर बाट दता
　　　　खिलदडे बच्चो को चूसकार
　　　　फिर से पा लेता हूँ उन्ही स पाया प्यार

हिलक ता।
खडा हो जाता है दुघटना ो में
और मझे धकेल कर कहता—
'बढ आगे'
और जम उन्हीं के हाथा सहेजता किसी अपरिचित का
जुड जाता उनक आतिथ्य भाव में
उनका समवत स्वर कहता—
'कहीं भी हो तुम। वे सब तुम्हारे है
जो तुम्हारी तरह चलत हैं गिरते हैं
भटकते हैं।'

समूचा गाँव चलता अदश्य मेरे कदमो के साथ
चलकर उस छोट से कमरे की शैया पर
मरे ही साथ लेट जाता
हम मव लाग एसे ही तो रहते थ अपने गाँव में
कमरे की दीवारा पर
मेरी ऊँघ के माथ ही
सज जाना पूरा गाँव। बिछ जाती बिसात
चौपड गेलत बूढे पहले तो कामातुर आँखा मे
ताकते सुन्दरियाँ
फिर कपाल खुजाते
चुप हो जाते हिसाबी किताबी
और महगाई की मार पर
कासत अदश्य का
राजा, कारिन्दों को
और खुद को
कमर की मीधी दीवारा पर उग आती पगडडियाँ
खेता की ओर भागत पाँव
झरने स पानी लाती कामिनियाँ
मैं स्मति में दबाच लता उन्हे
अपनी बाँहा में

और कल्पना में ही उनसे होता निवेदित
पगडंडियों पर हमसाथियों के पीछे
मैं भी तो होता
असंख्य पाँवों के पीछे
जो बन्द होते मेरे पाँव जूतों में
पर वे फटे पाँव
पाँत में चलते
पहुँचते हैं कस्बों, शहरों
व सड़कों के किनारों तक
वे फैलते हैं पूरे महादेश में
फलते ही रहते हैं व खाली
नंगी खड़ी दीवारों पर
सोता है गाँव मेरी विस्मृति में
जागता है स्मृति में।
रात रात उनके साथ
एक होते हुए मैंने देखा है
उन्हें रोते हुए
वे गाँव से दूर होने की वजह
नहीं रोते
रोते हैं स्वर्ग की तलाश में
पाकर नरक
मैं उन्हें हँसते भी देखता हूँ
हैरत में
उनके चौड़ों से बड़े हो गये हैं
शहरों के मकान।
वे हँसकर कहते हैं मुझसे
जैसे-जैसे बढ़ रहे हैं ऊँचे मकान
आदमी का दिल छिप कर छोटा हो रहा है
क्या वजह ?
मैं खोजने लगता हूँ वजह
किताबों, अखबारों में
खिसकता है वजह का सिरा मुझसे

दीवारों पर टपाटप रिसता है पानी
शहर का पानी
जग लगी तस्वीर से घिर जाता है शहर घर
हाँ, आये थे वे मेरे साथ
मेरे ही साथ पहल पहल
आलिंगनबद्ध से
कि मुझे लगा ही नहीं भीड भरे इस शहर में
अकेला हूँ मैं
मेरे साथ आए थे मिस्त्री, बढई, चमार, लोहार
पंडित, खत्री, कामगार
शहर में घुसते
मेरी ही तरह उनकी चौकस आँखों में
चमकी थी चौंक
घबराहट
और दहशत।
समूचे गाव के झगडे भी साथ आए थे
और रहस्य भी
उनका अतीत भी चुपचाप चला आया था पीछे पीछे
बीमार कुत्ते-सा लँगडाता नि शब्द।
भीतर के झगडों से टूटते गाव की धूल भी आयी थी
पहाड के सिरो पर टगी
अतरिक्ष की चुप्पी भी
आए थे विशाल पर्वत
बर्फ लदी चोटियाँ
सुबह और शाम के
मनोहारी दृश्य।
लालच में जब-तब
चुपके से बिना आहट
उन्हें पलट लेता हूँ देखने
रातें बिता देता हूँ गाँव घर की उसी खिडकी पर
जो अभी भी चिपकी है

मेरे बायें कान में
जहाँ मैं देखता हूँ
गोरी शक्र
बन्दर पुच्छ
गाँव के साथ ही चला आया है
टूटा राजराजेश्वरी मन्दिर
मूर्तिहीन
वियावान में चुपचाप
समय के हाथों होता ध्वस्त
ढोल-नगाड़ों वाले
मामान्त सन्ध्यान्त की वे धुनें,
बजबजाती रहती हैं अब-तब
शहर में पता नहीं मुझे
कब होता है मागान्त ? कब सुबह ?
गाँव के साथ कितनी ही चीजें आयी थीं
नजदीक का कस्बा
बाँज का जंगल
नदी बनी सड़कें
बन रहे स्कूल
गरीब बच्चों के झोले
कड़ाही पर पका साग
मेरी भूल भी चली आई थी।
जिसे सचमुच भूल आया था गाँव में।

बरसों बाद
अचानक
न जाने क्या हुआ कि शहर में रहते-रहते लगा
रूठ गया है गाँव
अब न वह सपने में आता है, न मक भवन की दीवार पर
न स्मृति में
कितने बरस हो गए
पहले कभी-कभार किसी की मृत्यु में

खड़ा हो जाता था ड्योढ़ी पर
सकोच में सिरहान क पास आकर
बहद औपचारिक ढंग में
अब नहीं आ रहा है गांव
और मैं अपन अकलपन में
कसमसा कर
दौड़ता हूँ सुबह शाम महानगर की ओर
खोजता हूँ अपन सारे समूच गांव को
अपन ही इद गिद
आत्मा के द्वार पर न खुलने वाला ताला जड़ा है।
लौट ता नहीं गया होगा गांव
सोचता हूँ अपन ही गांव की तरफ
शहर म चलकर न
नयी सड़कों स
वहां पहुँच मैंने देखा है
नहीं है वहां अब मरा गांव
कुछ बरस पहल
पिता की मौत पर तो वह वहां थी
मातम में
बांटता हुआ अपनत्व
न वहां वे पेड़ है
न मकान
न छतें
न आसमान
न व बच्चे
न बूढे
न वैसी सुदरियां
न खलिहान
न बियाबान
दौड़-दौड़ कर इधर उधर

खोज रहा हूँ मैं अपना गाव

आपन

तुमने कही देखा हो

तो बस एक वार

ले आना मुझ तक उस

ओंकार की अनन यात्रा मे पहले

मैं जी भर कर चूमना चाहता हूँ

आभार म

अपन उस गाव का

वह पहले तो मेर साथ ही आया था

शहर मे

झटक कर, मुझे अकला कर कहाँ चला गया वह

स्मृति की खोह मे

ढकेल रहा हूँ म पत्थर

आगे सिफ अँधेरा है

खुलता है भीतर द्वार

भीतर से
खटखटाता है कोई
खोलो—
सुनता हूँ अनुगूंज
बाहर खुल आसमान को देख
छटपटाता हूँ कैसे जाऊँगा,
हृदय या मन या आत्मा के अन्दर

कौन हो तुम
अलक्ष्य
कौन हो पुकारने वाले
खोलो

खोलो
धडधडाता है मस्तिष्क के भीतर
स्मृति के मणिदीप मे
कहता है वह सार्वजनिक भाषा मे
नितान्त मुखर
तुमने बाहर से बन्द किया है सत्य को
असीम के विस्तार म तुम एक पिंजरा हो
खोलो उन्मुक्ति का द्वार

खुलता है सब कुछ
उत्तर म हँसता है वह

हथौड़ा बजाते। घनकारते
बाहर मे तुम जितना खुलापन देख रहे हो
वही तो छलना है
शून्य है निर्जीव
जितना ही उछलोगे बाहर देखने के लिए
उतने ही बौने हो जाओगे
उतनी ही फैल जायेगी
'दखो सिफ उतना ही
जितनी काया म समा सके'

खालो
खाला
खोना
दस्तक तेज कर दता है वह

पर कहाँ है द्वार ?
देखो—नही जानते तुम

दस द्वार
दखा दसो द्वारो मे कुछ न कुछ
बाहर आता है
बाहर आता महाधकार
और जिसे तुम आलोक कहते हो
उम अधिक घना कर जाता है
अधिक अँधेरा अधिक क्षणजीवी
अधिक पराश्रित

दस्तक म
याचना नही, न आवेश, न घृणा
न तिरस्कार
बस आग्रह है निर्लिप्त सा
पूछता हू उमसे
मौन म

कैसे, कहाँ किस तरह प्रवेश करें दस द्वारो से
क्या कभी पिजरा भी स्वय अपने द्वारा स
युक्त हो सकता है ?

खिलखिलाता है वह
सुना
तुमने पूछे थे द्वार तो मैंने बताये
तुमने माग नही पूछा
माग होते हैं द्वारहीन
गतव्य से जुडे
और गतव्य
स्वय कुछ नही होता
कृत्रिम आश्वस्ति का एक पडाव होता है

फिर भी खोलो तो राही
खटाक खटाक खटाक
नि शब्द प्रहार की तरह बजने लगता है हृदय के सिरे पर

ठहरा
कुछ सोचने तो दो ।
सँभलने दो
बाहर भाषा के जादूगर
आखेट निमित्त
स्तम्भित किए है दश्यो को
खुले आम
उन दश्या पर आरोप हैं

खालो
खोलो
खोलो
वह कहता है आवेश मे
पस्त-सा मैं सम्बोधित होता हूँ फिर
अच्छा, कहाँ है द्वार

किस ओर
और फिर द्वार के परे कोई भीतर है कारा
अभेद्य दीवारों में घिरा अँधेरा

मेरी बातों का उत्तर दिए बिना
वह घबियान लगता है
जिसकी तमाम भीतरी दीवारों को
काँपने लगता है पूरा मन्दिर

रुको भाई
रुका
गिरा दोगे क्या साँस के स्तम्भों पर खड़ा
यह प्रासाद
वह फिर हँसता है
हवा म खडा है साँस क तानो का भवन
और शून्य के
तथाकथित विराट म कद
तुम कद हो । कद म
पराधीन
बधक
और मैं कहता हूँ खोलो
अन्दर की ओर चले आओ
स्वच्छन्द की ओर
जहा न बधन है न काराएँ न सीमाएँ
बस उन्मुक्ति है
सीमातीत समयातीत अस्तित्व ।

रास्ते वही हैं

रास्ते वही हैं

जिस मिट्टी से बना हूँ

शायद वह
मां है या जनक
या भागीरथी के किनारे
या हिमालय की हवा
या पडो की हरीतिमा
अब वे यहाँ भी याद आते ह।

बस उदासी के समय
नही याद आता
मोती मिस्त्री का बूढा चेहरा
न बूढी विधवाओ की
समय गिनती आँखें
सूखा व्यापता है पडो पर तक
वह भी याद नही
गाँव घर के न जले चूल्हो की धुँधलायी तस्वीर भी
याद नही।

यह तो मैं
अपने बारे मे कह रहा हूँ
तुम्हारे बारे मे नही
जो छोड आए पीछे
अपन सबध
वे तो ठीक ठीक उस मिट्टी से बने हैं

खेतो मे काम करते लोग

सीढ़ीदार खेतो मे
पानी पर झिलमिलाता है वही कुछ
जो काम करते लोगा की
आँखा मे है निबद्ध

आँखो के दपण मे
हिमशिखर
हिमवर्ती कुहासे का
रहस्य
घोर से घर मुखिया
ठेलता है खुद का
जैसे रहस्य ठेल
वह आता हो
वास्तविकता म

काम करती औरता के
सपना म
भरे कोठार
हाथो म छनछनाती चूडियाँ
चाँदी के टकण म बदलेंगी

कब होगा सवेरा

दिन के ओर-छोर

निकलता है सूरज
उस पवत म
डूबता है इस पवत की ओर

दिन के निवासी
पर्वता के लिए
दिन का
यही है ओर छार

जैम ही डूबता है दिन
छाता है अँधेरा घना
पेडो पर टँग
नीखते है तारे
सारे के सार

तब से ही
पहाडी मन
हो जाता है प्रतीक्षारत
कब हो
भोर

रात की इस प्रशान्ति मे
बेचन मन
सोचता है कब हो
जीवन्त शार
भर उठें
दिन के ओर छोर

शिखर पर

दिखता है हमेशा उजाला
    शिखर पर
और घाटियों में
    घुप्प अँधेरा
इस घुप्प अँधेरे में
    मुँह ढाँप साई है गरीबी
    वहाँ से थोड़े ही नीचे है

वह रेखा
    जिससे पीडित हैं राजनेता
    अँधेरी गुफा में
        जाती है चुपचाप
        बिना शोर किए।

ऊपर उजाला है
शिखर की यात्रा में
    आकाश का भाग्य
    पढ सकता है आदमी
    शाश्वत—यह भी तो भविष्य है
        अतीत का।

मिली-जुली रेखाओं से
    ढला है यह होना न होना

कभी-कभी

उगता है मेरे भीतर
पहाड
चट्टानो ढलानो वाले
एकात को
पडो से पाटने वाला है।

कभी कभी पूछता है वह
मुख से ही
कि कब मैं अपनी उपेक्षा मे
करूँगा उसे नष्ट
कब होगा उसका
बिंब क्षय

कभी कभी वह उग कर
हाने लगता है
लघुरूप
और विलुप्त हो जाता है
मुझे खुद से बांधकर
तब मैं
उसकी प्रतीति के लिए
देखता हूँ चित्र
और पाता हूँ
उन्ही तस्वीरा के किसी कोने मे
घास के ढेर के पीछे

कभी-कभी

उगता है मेरे भीतर
पहाड
चट्टानो ढलानो वाले
एकान्त को
पेडो से पाटने वाला है।

कभी कभी पूछता है वह
मुझ से ही
कि कब मैं अपनी उपेक्षा म
करूँगा उसे नष्ट
कब होगा उसका
बिब क्षय

कभी कभी वह उग कर
होने लगता है
लघुरूप
और विलुप्त हो जाता है
मुझे खुद से बाँधकर
तब मैं
उसकी प्रतीति के लिए
देखता हूँ चित्र
और पाता हूँ
उन्ही तस्वीरो के किसी कोने मे
घास के ढेर के पीछे

खड़े हैं पेड

खड़े हैं पेड
        चलते आदमी को देख
        खड़े हैं
        पहाड़ भी
        चल रही है हवा
                देने को कुछ
        पानी भी बह रहा है
                तृप्ति के निमित्त

खिल रहे हैं फूल
        तोड़ते सन्नाटे की तन्द्रा
        और अंतरिक्ष का अकेलापन

खड़े हैं पहाड़
        सोचते हैं शायद ठिठके से
        आदमी चल रहा है तो
        क्या करने
                क्या देने   ?

प्रार्थना

निर्विकल्प समाधि में
स्थिर हैं पहाड़
प्रार्थना के लिए
झुके पड़
पड़ी पहाड़ियाँ
चुपचाप अनवरत
द्रवित
पुण्य को
प्रवाह देती हैं नदियाँ

भव्यता है समाधि में
फिर दीनता क्यों है
उस चेहरे में
जो हाथों को उठा
रोज प्रणत होता है अलौकिक के आग

दीनता स्वयं में
प्रणति है/गहरे झुकेपन में
निमग्न शाश्वत प्रणति
समाधि और प्रणति
लक्ष्य और साधना।

ये मात्र शब्द नहीं हैं
आज भी इनके रूपान्तर
साक्षात हैं पर्वताचल में

मैं इन्ही के लिए
प्रार्थित हूँ पिता
तुम शिव हो
इन्हें सिद्धि दो
स्वीकृति भी
या इनके पराभव के लिए
खलबली मचा दो
भव्यता के शिखरवर्ती रूप
नीचे नही देख रहे
रिसते घावो को
जहा मे पुण्यसलिला
लेती है पुण्य
वही रक्ष्य
अवलम्ब इन्हे दो
यही प्रार्थना है ।
मैं प्रार्थनारत हूँ
मैं प्रार्थनारत हूँ।

शिखर

अंकित है
        अद्भुत-सा वह
                दृश्य
                वर्णनातीत ।

चेतना की कोई
                प्रखर लहर
                नही टोक सकती
                कब कहाँ ?
                देखा होगा अतीत मे
                वह शिखर

वह शिखर
उभरा था पर्वतमालाओ के बीच
नितात अकेला
जसे सन्नाटे के भीतर
स्वर ढल पडे हो चुप्पी के
                        ठोस ठहराव मे
अविस्मृति का वह आलेख
                जैसे पढना है
                आत्मा की
                असमर्थता

कहाँ देखा होगा वह शिखर
        निरुत्तर है जीवन ।

पेडो की छाया

सोयी है नन्ही गुदगुदी
दूब
चुपचाप फैली है साय मे

घेरे मे सँवलाई
छाया
समेटे है खुद को
धूप म
दिन मे

कितनी ही पीढियो के एकात
स्मतिया और गाथाओ मे
लपेटे हुए

धूप के अकेले विस्तार स
घिरी छाया
सन्नाटे भरे
विराट आसमान की ओर
उन्मुख है ।

पेडो की छाया तले
भटकता है मन
जस खोजता हो
कारण

ढलानो पर

ढलानो पर ऊंघती है धूप
हवा करवट बदलती है
सुबह होकर
ढेर सारी ताजगी।

हरे पहाड़
श्वेत शृंगो पर
बिछलती
शीत-ऊष्मा

ढलानो पर कूदता है समय
घाटियो मे
शाम से पहले
झपकता है अंधेरा
लौटते वन से थके
पशु और चरवाहे
सनातन से
उच्च शिखरो पर
ठिठकती देर तक
लालिम
शाम
पार जाना आसमानो से
कहीं छिप
ढलानो का
अनकहा सा सुख।

आँखे खोजेगी तुम्हे
(कामेन काल्चेव के लिए)

आँखें खोजेंगी तुम्हें
शून्य मे
भीड मे भी
पसरा होगा शून्य।

टटोलेंगे हाथ
किताबो को
पन्ने पलटते
अक्षरों मे उभरेगी
तुम्हारी तस्वीर
किसी उस दिन की
बताया था पूर्व की यात्राओ के बारे मे
बताया था साधारण लोगो के बारे म

उन्ही से मिलता है तुम्हारा चेहरा
जो हैं मेहनतकश
जो रात दिन लगे हैं स्थितियाँ सुधारने मे
जो रात दिन तुम्हे पढते है।
उभरेंगी कई तस्वीरें

तुम्हारी खामोश मुस्कान
घेरे है मुझे एक किले की तरह
पहले से ही कद हूँ मैं
तुम्हारी सादगी से

आँखें खोजेंगी तुम्हें
कान-काना म
दोस्ता के बीच ।

एक अतृप्त-सी चाह
खोजेगी तुम्हें हर ओर
केरवा* से बड़े शहर तक

अभी तो कुछ और बातें करनी थीं
अभी तो और भरना था बाता म
अभी तो और कहना था कुछ/बहुत कुछ ।

आत्मा पायेगी तुम्हें
अकही-सी
पीड़ा म

—

* [illegible]

गगा प्रसाद विमल का जन्म हिमालय के एक छोटे कस्बे मे 1939 म हुआ।

कथाकार के रूप मे विख्यात गगा प्रसाद विमल एक कवि के रूप में अपने पूर्ववर्तियो और समकालीनो से कई अर्थों म भिन्न हैं। पिछले तीन दशको मे रची उनकी कविताएँ वातावरण से कवि की मुठभेड का एक रोचक दस्तावेज हैं। 'विजप' (1967) और 'बोधिवृक्ष' (1982) काव्य-सकलनो के अतिरिक्त उनके सात कहानी-सग्रह और चार उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। विश्व की अनेक भाषाओ के साहित्य के अनुवादक के रूप मे भी विमल चर्चाओ के केंद्र मे रहे हैं।

उनकी कृतियो के विश्व की अनेक भाषाओ मे अनुवाद हुए हैं। अपनी रचनाओ के लिए उन्हें अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुए हैं। विश्व के अनेक देशो म उन्होंने भारतीय साहित्य पर व्याख्यान दिए, कई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो मे भाग लिया तथा अन्तर्राष्ट्रीय काव्य मचो पर कविता पाठ किया है। 25 वर्षों तक अध्यापन करने के उपरान्त आजकल वे केंद्रीय हिन्दी निदेशालय मे निदेशक के रूप मे कार्यरत हैं।